जुगदिमणपज्जवणाणं तेण तदावरणं पि तदिविहं होदि। मणस्स कधमुजुगत्तं? जो जधा अत्थो ट्ठिदो तं तथा चिंतयंतो मणो उज्जुगो णाण। तव्विवरीयो मणो अणज्जुगो। कथं वयणस्स उज्जुवत्तं? जो जेम अत्थो ट्ठिओ तं तेम जाणावयंतं वयणं उज्जुवं णाम। तव्विवरीयमणुज्जुवं। कधं कायस्स उज्जुवत्तं? जो जहा अत्थो ट्ठिदो तं तहा चेव अहिणइदूण दरिसयंतो (* अ आ ता प्रतिषु 'दरिसमंतो' इति पाठः।) काओ उज्जुओ णाम। तव्विवरीयो अणुज्जुओ णाम। तत्थं जं उज्जुवं पउणं (* अ आ प्रत्योः 'पउण्णं' इति पाठः।) होदूण मणस्स गदमट्ठं जाणदि तमुजुमदिमणपज्जयणाणं। अचिंतियमद्धचिंतियं विवरीयभावेण चिंतियं च अट्ठं ण जाणदि त्ति भणिदं होदि।

जमुज्जुवं पउणं होदूण चिंतियं पउणं (* अ आ ता प्रतिषु 'चिंतियपउणं' इति पाठः।) चेव उल्लविदमट्ठं जाणदि तं पि उजुमदिमणपज्जवणाणं णाम। अबोल्लिदमद्दबोल्लिदं विवरीयभावेण बोल्लिदं च अट्ठं ण जाणदि त्ति भणिदं होदि, ऋज्वी मतिर्यस्मिन् मनःपर्ययज्ञाने तत् ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानमिति व्युत्पत्तेः। उज्जुववचिगदस्स मणपज्जयणाणस्स उजुमदिमणपज्जयववएसो (* ता प्रतौ 'पज्जववववएसो' इति पाठः।) ण पावदि त्ति?

अर्थको विषय करता है; अतः ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान तीन प्रकारका है और इसीसे तदावरण कर्म भी तीन प्रकारका है।

शंका -- मनको ऋजुपना कैसे आता है?

समाधान -- जो जिस प्रकारसे स्थित है उसका उस प्रकारसे चिन्तवन करनेवाला मन ऋजु है और उससे विपरीत चिन्तवन करनेवाला मन अनृजु है।

शंका -- वचनमें ऋजुपना कैसे आता है?

समाधान -- जो अर्थ जिस प्रकारसे स्थित है उसे उस प्रकारसे ज्ञापन करनेवाला वचन ऋजु है और उससे विपरीत वचन अनृजु है।

शंका -- कायमें ऋजुपना कैसे आता है?

समाधान -- जो अर्थ जिस प्रकारसे स्थित है उसे उसी प्रकारसे अभिनय द्वारा दिखानेवाला काय ऋजु है और उससे विपरीत काय अनृजु है।

उनमेंसे जो ऋजु अर्थात् प्रगुण होकर मनोगत अर्थको जानता है वह भी ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है। वह अचिन्तित, अर्धचिन्तित और विपरीत रूपसे चिन्तित अर्थको नहीं जानता है; यह उक्त कथनका ताप्तर्य है।

जो ऋजु अर्थात् प्रगुण होकर विचारे गये व सरल रूपसे ही कहे गये अर्थको जानता है वह भी ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है। यह नहीं बोले गये, आधे बोले गये और विपरीतरूपसे बोले गये अर्थको नहीं जानता है, वह उक्त कथनका तात्पर्य है; क्योंकि, जिस मनःपर्ययज्ञानमें मति ऋजु है वह ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है, ऐसी इसकी व्युत्पत्ति है।

शंका -- ऋजुवचनगत मनःपर्ययज्ञानकी ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान संज्ञा प्राप्त नहीं होती?

ण, एत्थ वि उज्जुवमणेण विणा उज्जुववयणपवुत्तीए अभावादो। चिंतिदं कहिदे संते जदि जाणदि तो मणपज्जयणाणस्स सुदणाणत्तं पसज्जदि त्ति वुत्ते -- ण, एवं रज्जं एसो राया वा केत्तियाणि वस्साणि णंददि त्ति चिंतिय एवं चेव बोल्लिदे संते पच्चक्खेण (* आ का प्रत्योः 'पच्चक्खेप', ता प्रतौ 'पच्चक्खेप(ण)' इति पाठः।) रज्जसंताणपरिमाणं रायाउट्ठिदिं (* ता प्रतौ 'रायाउट्ठिदं' इति पाठः।) च परिच्छंदंतस्स सुदणाणत्तविरोहादो।

(* ता प्रतावतः प्राक् 'जदि मणपज्जव(णाणं)' इत्यधिकः पाठ उपलभ्यते।) जमुज्जुवभावेण चिंतियं उज्जुवसरूवेण अहिणइदमत्थं जाणदि तं पि उजुमदिमणपज्जवणाणं णाम, उजुमदीए विणा कायवावारस्स उजुवत्तविरोहादो। जदि मणपज्जयणाणमिंदिय-णोइंदिय-जोगादिणिरवेक्खं संतं उप्पज्जदि तो परेसिं मण-वयण-कायवावारणिरवेक्खं संतं किण्ण उप्पज्जदि? ण, विउलमइमणपज्जयणाणस्स तहा उप्पत्तिदंसणादो (* इंदियणोइंदिय-जोगादिं पेक्खित्तु उजुमदी होदि। णिरवेक्खिय विउलमदी ओहि वा होदि णियमेण।। गो. जी. ४४५.)। उजुमदिमणपज्जयणाणं तण्णिरवेक्खं (* प्रतिषु 'तं णिरवेक्खं' इति पाठः।) किण्ण उप्पज्जदे? ण, मनःपर्यज्ञानावरणीय-कर्म्मक्षयोपशमस्य वैचित्र्यात्। जहा ओहिणाणावरणीयक्खओवसमगदजीवपदेससंबंधिसंठाणपरूवणा कदा, मणपज्जयणाणावरणीयक्खओवसमगदजीवपदेसाणं संठाणपरूवणा

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यहाँपर भी ऋजु मनके विना ऋजु वचनकी प्रवृत्ति नहीं होती।

शंका -- चिन्तित अर्थको कहनेपर यदि जानता है तो मनःपर्ययज्ञानके श्रुतज्ञानपना प्राप्त होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यह राज्य या यह राजा कितने दिन तक समृद्ध रहेगा, ऐसा चिन्तवन करके ऐसा ही कथन करनेपर यह ज्ञान चूँकि प्रत्यक्षसे राज्यपरम्पराकी मर्यादाको और राजाकी आयुस्थितिको जानता है इसलिए इस ज्ञानको श्रुतज्ञान माननेमें विरोध आता है।

ऋजु भावसे विचार कर एवं ऋजुरूपसे अभिनय करके दिखाये गये अर्थको जानता है वह भी ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है, क्योंकि, ऋजु मतिके विना कायकी क्रियाके ऋजु होनेमें विरोध आता है।

शंका -- यदि मनःपर्ययज्ञान इन्द्रिय, नोइन्द्रिय और योग आदिकी अपेक्षा किये बिना उत्पन्न होता है तो वह दूसरोंके मन, वचन और कायके व्यापारकी अपेक्षा किये बिना ही क्यों नहीं उत्पन्न होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी यह विचित्रता है।

शंका -- जिस प्रकार अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमगत जीवप्रदेशोंके संस्थानका कथन किया है उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमगत जीवप्रदेशोंके संस्थानका कथन क्यों नहीं करते?

तहा किण्ण कीरदे? ण, मणपज्जवणाणावरणीयकम्मक्खओवसमस्स दव्वमणपदेसे वियसियअट्ठटच्छदारविंदसंठाणे समुप्पज्जमाणस्स तत्तो पुधभूदसंठाणाभावादो (* सव्वंगअंगसंभवचिण्हादुप्पज्जदे जहा ओही। मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा।। हिदि होदि हु दव्वमणं वियसियअट्ठच्छदारविंदं वा । अंगोवंगुदयादो मणवग्गणखंधदो णियमा।। गो. जी. ४४१-४२.) संपहि मणपज्जयस्स विसयभूदट्ठपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि --

मणेण माणसं पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णा सदि मदि चिंता जीविद-मरणं लाहालाहं सुह-दुक्खं णयरविणासं देसविणासं जणवयविणासं खेडविणासं कव्वडविणासं मडंबविणासं पट्टणविणासं दोणामुहविणासं अइवुट्ठि अणावुट्ठि सुवुट्ठि दुवुट्ठि सुभिक्खं दुब्भिक्खं खेमाखेम-भय-

रोग-कालसंपजुत्ते अत्थे वि जाणदि (* ता प्रतौ 'विजाणदि' इति पाठः। म. बं. १, पृ. २४. कथमयमर्थो लभ्यते? आगमाविरोधात्। आगमे ह्युक्तं मनसा मनः परिच्छिद्य परेषां संज्ञादीन् जानाति इति। त. रा. १, २३, ९.) ।।६३।।

मणेण मदिणाणेण। कधं मदिणाणस्स मणव्ववएसो? कज्जे करणोवयारादो। मणम्मि भवं लिंगं माणसं, अधवा मणो चेव माणसो। पडिविंदइत्ता घेत्तूण पच्छा मणपज्जयणाणेण जाणदि। मदिणाणेण परेसिं मणं घेत्तूण चेव मणपज्जयणाणेण मणम्मि ट्ठिदअत्थे जाणदि त्ति

समाधान -- नहीं, क्योंकि, मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम विकसित आठ पँखुड़ीयुक्त कमल जैसे आकारवाले द्रव्यमन प्रदेशोंमें उत्पन्न होता है, उससे इसका पृथग्भूत संस्थान नहीं होता।

अब मनःपर्ययज्ञानके विषयभूत अर्थका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं --

मनके द्वारा मानसको जानकर मनःपर्ययज्ञान कालसे विशेषित दूसरोंकी संज्ञा, स्मृति, मति, चिन्ता, जीवित-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाशष खेटविनाश, कर्वटविनाश, मडंबविनाश, पट्टनविनाश, द्रोणमुखविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय और रोगरूप पदार्थोंको भी जानता है।।६३।।

मनसे अर्थात् मतिज्ञानसे ।

शंका -- मतिज्ञानकी मन कैसे संज्ञा है?

समाधान -- कार्यमें कारणके उपचारसे मतिज्ञानकी मन संज्ञा सम्भव है।

मनमें उत्पन्न हुए चिह्नको मानस कहते हैं। अथवा मनकी ही संज्ञा मानस है। 'पडिविंदइत्ता' अर्थात् ग्रहण करके पश्चात् मनःपर्ययज्ञानके द्वारा जानता है। मतिज्ञानके द्वारा दूसरोंके मानसको ग्रहण करके ही मनःपर्ययज्ञानके द्वारा मनमें स्थित अर्थोंको जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। विपुल-

----

भणिदं होदि। एसो णियमो ण विउलमइस्स, अचिंदिदाणं पि अट्ठाणं विसईकरणादो। किं किमेदेण जाणिज्जदि त्ति वुत्ते मणपज्जयणाणविसयदिसा परूविज्जदे उत्तरसुत्तखंडेण -- परेसिं सण्णा सदि

मदि चिंता। जेण सद्दकलावेण अत्थो पडिविज्जाविज्जदि सो सद्दकलावो सण्णा णाम। तमुजुमदिमणपज्जयणाणी पच्चक्खं पेच्छदि। दिट्ठ(*का ता प्रत्योः 'ट्ठिद' इति पाठः।)-सुदाणुभूदट्ठविसयणाणविसेसिदजीवो सदी (* का प्रतौ 'सेदी', ता प्रतौ 'सदि' इति पाठः।) णाम। तं पि पच्चक्खं पेच्छदि। अमुत्तो जीवो कधं मणपज्जयणाणेण मुत्तट्ठपरिच्छेदियोहिणाणादो हेट्ठिमेण परिच्छिज्जदे? ण, मुत्तट्ठकम्मेहि अणादिबंधणबद्धस्स जीवस्स अमुत्तत्ताणुववत्तीदो। स्मृतिरमूर्ता चेत् -- न, जीवादो पुधभूदसदीए अणुवलंभा। अणागयत्थविसयमदिणाणेण विसेसिदजीवो मदी (* का ता प्रत्योः 'मदि' इति पाठः।) णाण। तं पि पच्चक्खं जाणदि। वट्टमाणत्थ (*प्रतिषु वट्टमाणस्स' इति पाठः।) विसयमदिणाणेण विसेसिदजीवो चिंता णाम। तं पच्चक्खं पेच्छदि। एदासिं तिविहचिंताणं विसईभूदअट्ठं पि जाणदि त्ति परूवणट्ठमुत्तरखंडं भणदि -- आउपमाणं जीविदं णाम। तस्स परिसमत्ती मरणं णाम। एदाणि दो वि जाणदि। जीविदणिद्देसो चेव कायव्वो, एत्तियाणि वस्साणि एसो जीवदि त्ति वयणेण चेव मरणावमादो? ण एस दोसो, दव्वट्ठिय-पज्जवट्ठियण

मतिमनःपर्ययज्ञानका यह नियम नहीं है, क्योंकि, वह अचिन्तित अर्थको भी विषय करता है। इसके द्वारा क्या क्या जाना जाता है, ऐसा पूछनेपर सूत्रके उत्तरार्ध द्वारा मनःपर्ययज्ञानके विषयकी दिशाका निरूपण करते हैं -- 'परेसिं सण्णा सदि मति चिंता'। जिस शब्दकलापके द्वारा अर्थका कथन किया जाता है उस शब्दकलापको संज्ञा कहते हैं। उसे ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानी प्रत्यक्ष देखता है। दृष्ट, श्रुत और अनुभूत अर्थको विषय करनेवाले ज्ञानसे विशेषित जीवका नाम स्मृति है। इसे भी वह प्रत्यक्ष देखता है।

शंका -- यतः जीव अमूर्त है अतः वह मूर्त अर्थको जाननेवाले अवधिज्ञानसे नीचेके मनःपर्यय-ज्ञानके द्वारा कैसे जाना जाता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, संसारी जीव मूर्त आठ कर्मोंके द्वारा अनादिकालीन बन्धनसे बद्ध है, इसलिए वह अमूर्त नहीं हो सकता।

शंका -- स्मृति तो अमूर्त है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, स्मृति जीवसे पृथक् नहीं उपलब्ध होती।

अनागत अर्थको विषय करनेवाले मतिज्ञानसे विशेषित जीवकी मति संज्ञा है, इसे भी वह प्रत्यक्ष जानता है। वर्तमान अर्थको विषय करनेवाले मतिज्ञानसे विशेषित जीवकी चिन्ता संज्ञा है, इसे भी वह प्रत्यक्ष देखता है। इन तीन प्रकारकी चिन्ताओंके विषयभूत अर्थको भी वह जानता है, इस बातका कथन करनेके लिए आगे सूत्रखण्ड कहते हैं -- आयुके प्रमाणका नाम जीवित है और उसकी परिसमाप्तिका नाम मरण है। इन दोनोंको भी जानता है।

शंका -- सूत्रमें 'जीवित' पदका ही निर्देश करना चाहिए था, क्योंकि, यह इतने वर्षोंतक जियेगा, इस वचनसे मरणका ज्ञान हो जाता है?

यावलंबिसिस्साणुगहट्ठं तदुत्तीदो कदलीघादेण मरंताणमाउट्ठिदिचरिमसमए मरणाभावेण मरणाउट्ठिदि(*प्रतिषु 'मरणावुट्ठिदि' इति पाठः)चरिमसमयाणं समाणाहियमरणाभावादो च। इच्छिदट्ठोवलद्धी लाहो णाम। तव्विवरीयो अलाहो। एदे वि पच्चक्खं जाणदि। एत्थ वि पुव्वं व परिहारो वत्तव्वो। इट्ठत्थसमागमो अणिट्ठत्थविओगो च सुहं णाम। अणिट्ठत्थसमागमो इट्ठत्थविओगो च दुःखं णाम। एत्तिएण कालेण सुहं होदि त्ति किं जाणदि आहो ण जाणदि त्ति? बिदिए ण पच्चक्खेण सुहावगमो, कालपमाणावगमाभावादो। पढमपक्खे कालेण वि पच्चक्खेण होदव्वं, अण्णहा सुहमेत्तिएण कालेण एत्तियं वा कालं होदि त्ति वोत्तुमजोगादो। ण च कालो मणपज्जयणाणेण पच्चक्खमवगम्मदे, अमुत्तम्मि तस्स वुत्तिविरोहादो त्ति।? ण एस दोसो, ववहारकालेण एत्थ अहियारादो। ण च मुत्ताणं दव्वाणं परिणामो कालसण्णिदो अमुत्तो चेव होदि त्ति णियमो अत्थि, अव्ववत्थावत्तीदो।

चतुर्गोपुरान्वितं नगरम् (*वइपरिवेढो गामो णयरं चउगोउरेहि रमणिज्जं। गिरिसरिकदपरिवेढं खेडं गिरिवेढिदं च कव्वडयं।। पणसयपमाणगामप्पाहाणभूदं मडंबणामं खु । वररयणाणं जोणी पट्टणणामं विणिद्दिट्ठं।। दोणामुहाभिधाणं सरिवइवेलाए वेढियं जाण। संवाहणं ति बहुविहरण्णमहासेलसिहरत्थं।। ति. प. ४, १३९८-१४००.), तस्स विणासो णगरविणासो। तमेत्तिएण कालेण होदि त्ति

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिए दोनों वचन कहे गये हैं। दूसरे,

कदलीघातसे मरनेवाले जीवोंका आयुस्थितिके अन्तिम समयमें मरण नहीं हो सकनेसे मरण और आयुस्थितिके अन्तिम समयका समानाधिकरण भी नहीं है, इसलिए भी उक्त दोनों ही वचन कहे गये हैं।

इच्छित अर्थकी प्राप्तिका नाम लाभ और इससे विपरीत अर्थात् इच्छित अर्थकी प्राप्तिका न होना अलाभ है। इन्हें भी प्रत्यक्ष जानता है। यहाँपर भी उपस्थित होनेवाली शंकाका परिहार पहलेके ही समान करना चाहिए। इष्ट अर्थके समागम और अनिष्ट अर्थके वियोगका नाम सुख है। तथा अनिष्ट अर्थके समागम और इष्ट अर्थके वियोगका नाम दुःख है। (इन्हें भी प्रत्यक्ष जानता है।)

शंका -- इतने कालमें सुख होगा, इसे क्या वह जानता है अथवा नहीं जानता? दूसरा पक्ष स्वीकार करनेपर प्रत्यक्षसे सुखका ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि, उसके कालके प्रमाणका ज्ञान नहीं उपलब्ध होता। पहला पक्ष माननेपर कालका भी प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि, अन्यथा इतने कालमें सुख होगा या इतने काल तक सुख रहेगा, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु कालका मनःपर्ययके द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होता नहीं है, क्योंकि, उसकी अमूर्त पदार्थमें प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यहाँपर व्यवहारकालका अधिकार है। दूसरे, काल संज्ञावाला मूर्त द्रव्योंका परिणाम अमूर्त ही होता है, ऐसा कोई नियम भी नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर अव्यवस्थाकी आपत्ति आती है।

जिसमें चार गोपुर अर्थात् दरवाजे हों उसकी नगर संज्ञा है और उसका विनाश नगरविनाश कहलाता

जाणदि। णगरदिट्ठी किण्ण परूविदा? ण, णगरविणासावगमस्स णगरट्ठिदिअवगमेण विणा उप्पत्तिविरोहादो। विणट्ठं पि णगरमेत्तिएण कालेण होदि त्ति जाणदि। सत्तेण विणा कधमेदं णव्वदे? ण, एदस्स सुत्तस्स देसामासियत्तादो। अंग-वंग-कलिंग-मगधादओ देसो णाम। एदेसिं विणासो देसविणासो णाम। तं जाणदि। एत्थ वि पुव्वं व तिविहा परूवणा कायव्वा। देसस्स एगदेसो जणवओ णाम, जहा सूरसेण-गांधार-कासी-आवंतिआदओ। एदेसिं विणासो जणवयविणासो। तं जाणदि। एत्थ तिविहा परूवणा कायव्वा। सरित्पर्वतावरुद्धं खेडं णाम। तस्स

विणासो खेडविणासो। एदम्हादो उवरिमसव्वविणासेसु तिविहा परूवणा कायव्वा। पर्वतावरुद्ध कव्वडं णाम। तस्स विणासो कव्वविणासो। पंचशतग्रामपरिवारितं मडंबं णाम। तस्स विणासो मडंबविणासो। नावा (* का प्रतौ 'गावा' इति पाठः।) पादप्रचारेण च यत्र गमनं तत्पत्तनं नाम। तस्स विणासो पट्टणविणासो। समुद्र-निम्नगासमीपस्थमवतरन्नौनिवहं द्रोणामुखं नाम। तस्स विणासो दोणामुहविणासो। एदं देसामासियं काऊण एत्थ घोसविणास-संवाहविणास-

----

है। वह नगरविनाश इतने कालमें होगा, इसे यह ज्ञान जानता है।

शंका -- सूत्रमें नगरकी स्थिति क्यों नहीं कही?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, नगरकी स्थितिका ज्ञान हुए विना नगरके विनाशके ज्ञानकी उत्पत्ति माननेंमें विरोध आता है।

विनष्ट हुआ भी नगर इतने कालमें बनेगा, इसे भी जानता है।

शंका -- सूत्रके विना यह बात किस प्रमाणसे जानी जाती है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यह सूत्र देशामर्शक है।

अंग, वंग, कलिंग और मगध आदि देश कहलाते हैं; इनके विनाशकी देशविनाश संज्ञा है। इसे वह जानता है। यहाँपर भी पहलेके समान तीन प्रकारकी प्ररूपणा करनी चाहिए। देशका एक देश जनपद कहलाता है। यथा शूरसेन, गान्धार, काशी और अवन्ती आदि। इनका विनाश जनपदविनाश कहलाता है। उसे भी वह जानता है। यहाँपर भी तीन प्रकारकी प्ररूपणा करनी चाहिए। नदी और पर्वतसे अवरुद्ध नगरकी खेट संज्ञा है, इसका विनाश खेटविनाश कहलाता है। इसके आगेके सब विनाशोंकी तीन प्रकारकी प्ररूपणा करनी चाहिए। पर्वतोंसे रुके हुए नगरका नाम कर्वट है, तथा उसका विनाश कर्वटविनाश कहलाता है। पाँचसौ नगरोंसे घिरे हुए नगरका नाम मडंब है, तथा उसका विनष्ट होना मडंबविनाश कहलाता है। नौकाके द्वारा और पैरोंसे चलकर जहाँ जाते हैं उस नगरकी पत्तन संज्ञा है, तथा उसका विनष्ट होना पत्तनविनाश कहलाता है। जो समुद्र और नदीके समीपमें स्थित है और जहाँ नौकाएँ आती-जाती हैं उसकी द्रोणमुख संज्ञा है, तथा उसका विनष्ट होना द्रोणमुखविनाश कहलाता है। इसे देशामर्शक मानकर यहाँपर

संणिवेसविणास-ड्डाणविणास-गामविणासादओ वत्तव्वा। तत्र घोषो नाम व्रजः। यत्र शिरसा धान्यमारोप्यते स संवाहः। विषयाधिपस्य (* प्रतिषु 'विषयाविषस्य' इति पाठः।) अवस्थानं संनिवेशः। समुद्रावरुद्धः व्रजः स्थानं नाम, निम्नगावरुद्धं वा। वृत्ति(* प्रतिषु 'वृति' इति पाठः।)परिवृतो ग्रामः। एदेसिमुप्पाद-ट्ठिदि-भंगे जाणदि त्ति भणिदं होदि।

प्रमाणातिरिक्ता वृष्टिर्वर्षणमतिवृष्टिः। आवृष्टिर्वर्षणम्, तस्य अभावः अनावृष्टिः। सस्यसम्पादिका वृष्टिः सुवृष्टिः। अतिवृष्ट्यवृष्टिलिंगा (* आ प्रतौ 'अतिवृष्टावृष्टिलिंगा', का ता प्रत्योः 'अतिवृष्ट्यावृष्टिलिंगा' इति पाठः।)स्वगतक्षारत्वादिगुणेन सस्यसम्पादने अक्षमा वा दुर्वृष्टिः। सालि-व्रीहि-जव-गोधूमादिधण्णाणं सुलहत्तं सुभिक्खं णाम। तव्विवरीयं दुब्भिक्खं णाम। मारीदि डमरादीण(* प्रतिषु 'मागीदिदमरादीण' इति पाठः।)मभावो खेमं णाम तव्विवरीदमक्खेमं। परचक्कागमादओ भयं णाम। खय-कुट्ठ-जरादओ रोगो णाम। एदे अत्थे कालसंपजुत्ते कालेण विसेसिदे उजुमदिमणपज्जयणाणी पच्चक्खं जाणदि। एदेसिमुप्पाद-ट्ठिदि-भंगे (* ता प्रतौ 'भंगो' इति पाठः।) जाणदि त्ति भणिदं होदि।

किंचि भूओ-अप्पणो परेसिं च वत्तमाणाणं (* का प्रतौ 'वट्टमाणाणं' इति पाठः।) जीवाणं जाणदि णो

घोषविनाश, संवाहविनाश, संनिवेशविनाश, स्थानविनाश और ग्रामविनाश आदिका कथन करना चाहिए। इनमेंसे घोषका अर्थ व्रज है। जहाँपर शिरसे लेकर धान्य रखी जाती है उसका नाम संवाह है। देशके स्वामीके रहनेके स्थानका नाम संनिवेश है। समुद्रसे अवरुद्ध अथवा नदीसे अवरुद्ध व्रजका नाम स्थान है। जो बाड़ीसे घिरा हो उसका नाम ग्राम है। इनके उत्पाद, स्थिति और विनाशको वह जानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

प्रमाणसे अधिक वर्षाका होना अतिवृष्टि है। आवृष्टिका अर्थ वर्षा है, उसका नहीं होना अनावृष्टि है। जिस वर्षासे धान्यकी अच्छी उत्पत्ति होती है वह सुवृष्टि है। अतिवृष्टि और अवृष्टि जिसका चिह्न है अथवा जो स्वगत क्षारत्व आदि गुणके कारण धान्यके उत्पन्न करनेमें असमर्थ है वह दुर्वृष्टि है। शालि, व्रीहि, जौ और गेहूँ आदि धान्योंकी सुलभताका नाम सुभिक्षा तथा इससे विपरीत दुर्भिक्ष कहलाता है। मारी, ईति व राष्ट्रविप्लव आदिके अभावका नाम क्षेम है,

तथा इससे विपरीत अक्षेम है। परचक्रके आगमन आदिका नाम भय है। क्षय, कुष्ट और ज्वर आदिका नाम रोग है। इन अर्थोंको 'कालसंपजुत्ते' अर्थात् कालसे विशेषित होनेपर ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानी प्रत्यक्ष जानता है। इनकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशको जानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

और भी -- व्यक्तमनवाले अपने और दूसरे जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको वह जानता

आवत्तमाणाणं जीवाणं (* का प्रतौ 'णाअवट्टमाणजीवाणं', ता प्रतौ 'अवत्तमाणजीवाणं' इति पाठः।) जाणदि (* म. बं. १, पृ. २४. व्यक्तमनसां जीवानामर्थं जानाति, नाव्यक्तमनसाम्। त. रा. १, २३, ९.) ।।६४।।

किंचि अत्थं उजुमदिणाणसंबद्धं भूओ पुणो वि भणिस्सामो (* ता प्रतौ 'भण्णिस्सामो' इति पाठः।) तं जहा -- कार्ये कारणोपचाराच्चिन्ता मनः, व्यक्तं निष्पन्नं संशय-विपर्ययानध्यवसायविरहितं मनः येषां ते व्यक्तमनसः, तेषां व्यक्तमनसां जीवानां परेषात्मनश्च सम्बन्धि वस्त्वन्तरं जानाति, नो अव्यक्तमनसां जीवानां सम्बन्धि वस्त्वन्तरम्, तत्र तस्य सामर्थ्याभावात्। कधं मणस्स माणववएसो? ण, 'एए छच्च समाणा' त्ति विहिददीहत्तादो। अथवा, वर्तमानानां जीवानां वर्तमानमनोगतत्रिकालसम्बन्धिनमर्थं जानाति, नातीतानागतमनोविषयमिति सूत्रार्थो व्याख्येयः।

दव्वदो जहण्णेण ओरालियसरीरस्स एयसमयणिज्जरमणंताणंतविस्सासोवचयपडिबद्धं जाणदि। उक्कस्सेण एयसमयइंदियणिज्जरं जाणदि (* अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयपबद्धं तु। चक्खिदियणिज्जिण्णं उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे।। गो. जी. ४५०. तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ।। नं. सू. १८.) तेसिं मज्झिमदव्ववियप्पे अजहण्णअणुक्कस्सउजुमदिमणपज्जवणाणी जाणदि। एवं जहण्णुक्कस्सदव्ववियप्पा सुत्ते असंता वि पुव्वाइरियोवदेसेण परूविदा। संपहि जहण्णुक्कस्सकालपमाणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि --

----

है, अव्यक्त मनवाले जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको नहीं जानता।।६४।।

'किंचि' अर्थात् ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानसम्धी अर्थको 'भूयः' अर्थात् फिरसे भी कहते हैं। यथा -- कार्यमें कारणका उपचार होनेसे चिन्ताको मन कहा जाता है। 'व्यक्त'का अर्थ निष्पन्न होता है। अर्थात् जिनका मन संशय, विपर्यय और अध्यवसायसे रहित है वे व्यक्त मनवाले जीव हैं; उन व्यक्त मनवाले अन्य जीवोंसे तथा स्वसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य अर्थको जानता है। अव्यक्त मनवाले जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य अर्थको नहीं जानता है, क्योंकि, इस प्रकारके अर्थको जाननेका इस ज्ञानका सामर्थ्य नहीं है।

शंका -- मनको मान व्यपदेश कैसे किया है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि 'एए छच्च समाणा' इस नियमके अनुसार यहाँ दीर्घ हो गया है। अथवा, वर्तमान जीवोंके वर्तमान मनोगत त्रिकालसम्बन्धी अर्थको जानता है, अतीत और अनागत मनोगत विषयको नहीं जानता; इस प्रकार सूत्रके अर्थका व्याख्यान करना चाहिए।

द्रव्यकी अपेक्षा वह जघन्यसे अनंतानंत विस्रसोपचयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले औदारिकशरीरके एक समयमें निर्जराको प्राप्त होनेवाले द्रव्यको जानता है, और उत्कृष्ट रूपसे एक समयमें होनेवाले इन्द्रियके निर्जराद्रव्यको जानता है। इन उत्कृष्ट और जघन्यके मध्यके जितने द्रव्यविकल्प हैं उन्हें अजघन्यानुत्कृष्ट ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानी जानता है। इस प्रकार यद्यपि जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्यके विकल्प सूत्रमें नहीं कहे हैं, तथापि पूर्व आचार्योंके उपदेशसे उनका कथन किया है। अब जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं --

----

कालदो जहण्णेण दो-तिण्णिभवग्गहणाणि।।६५।।

जदि दो चेव भवग्गहणाणि जाणदि तो ण तिण्णि जाणदि। अह तिण्णि जाणदि तो ण दोण्णि, तिण्हं दुब्भावविरोहादो त्ति? ण एस दोसो, वट्टमाणभवग्गहणेण विणा दोण्णि, तेण सह तिण्णि भवग्गहणाणि जाणदि त्ति तदुत्तीदो।

उक्कस्सेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि।।६६।।

एत्थ वि वट्टमाणभवग्गहणेण विणा सत्त, अण्णहा अट्ठ जाणदि त्ति घेत्तव्वं। अणियदकालभवग्गहणणिद्देसादो एत्थ कालणियमो णत्थि त्ति अवगम्मदे।

जीवाणं गदिमागदिं पदुप्पादेदि (* म. बं. १, पृ. २५. तत्र ऋजुमतिर्मनःपर्यय कालतो जघन्येन जीवानामात्मनश्च द्वि-त्रीणि भवग्रहणाणि, उत्कर्षेण सप्ताष्टौ गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति। स. सि. १-२३, त. रा. १, २३, ९. कालओ णं उज्जुमई जहण्णेण पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ ।२ नं. सू. १८.) ।।६७।।

एदम्हि काले जीवाणं गदिमागदिं भुत्तं कयं पडिसेविदं च पदुप्पादेदि जाणदि त्ति घेत्तव्वं।

खेत्तदो ताव जहण्णेण गाउवपुधत्तं उक्कस्सेण जोयणपुधत्तस्स अब्भंतरदो णो बाहिद्धा (*म. बं. १, पृ. २५. क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण योजनपृथक्त्वस्याभ्यन्तरं न बहिः। स. सि. १-२३. त. रा. १, २३,९. खेत्तओ णं उज्जुमई अ जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डगपयरे, उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तीसाए छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपंचेदिआणिं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ। नं. सू. १८.) ।।६८।।

कालकी अपेक्षा जघन्यसे वह दो-तीन भवोंको जानता है ।।६५।।

शंका -- यदि दो ही भवोंको जानता है तो वह तीन भवोंको नहीं जान सकता, और यदि तीनको जानता है तो दोको नहीं जानता, क्योंकि, तीनको दो रूप माननेमें विरोध आता है।

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, वह वर्तमान भवके विना दो भवोंकी और उसके साथ तीन भवोंकी बात जानता है, इसलिए दो और तीन भव कहे हैं।

उत्कर्षसे सात और आठ भवोंको जानता है ।।६६।।

यहाँपर भी वर्तमान भवके विना सात अन्यथा आठ भवोंको जानता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। अनियत कालरूप भवग्रहणका निर्देश होनेसे यहाँ कालका नियम नहीं है, ऐसा जाना जाता है।

जीवोंकी गति और आगतिको जानता है ।।६७।।

इस कालके भीतर जीवोंकी गति, आगति, भुक्त, कृत और प्रतिसेवित अर्थको 'पदुप्पादेदि' अर्थात् जानता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

क्षेत्रकी अपेक्षा वह जघन्यसे गव्यूतिपृथक्त्वप्रमाण क्षेत्रको और उत्कर्षसे योजनपृथक्त्वके भीतरकी बात जानता है, बाहरकी नहीं।।६८।।

बेहि दंडसहस्सेहि एयं गाउअं होदि। तमट्ठहि गुणिदे गाउअपुधत्तं। एदस्स घणमेत्तं उजुमदिमणपज्जयणाणी जहण्णेण जाणदि। ओहिणाणिस्स जहण्णखेत्तमंगुलस्स असंखेज्जदिभागो त्ति वुत्तं। तक्कालो आवलियाए असंखेज्जदिभागो। इमस्स पुण ओहिणाणीदो ऊणयरस्स (* ता प्रतौ 'ऊणयस्स' इति पाठः।) खेत्तं गाउअपुधत्तं, कालो दो-तिण्णि वग्गहणाणि त्ति भणिदं। कधमेदं घडदे? ण, दोण्णं णाणाणं भिण्णजादित्तादो। तमोहिणाणं णाण संजदासंजदविसयं, मणपज्जयणाणं पुण संजदविसयं। तदो भिण्णजादित्तं गमदे। तेण दोण्णं णाणाणं ण विसएहि समाणत्तं। किंच -- जहा चक्खिदियं रसादिपरिहारेण रूवं चेव परिच्छिंददि तहा मणपज्जयणाणं पि भवविसयासेसअत्थ (* ता प्रतौ 'सेसमत्थ--' इति पाठः।)पज्जाएहि विणा जेण भवसण्णिददो -तिण्णिवंजणपज्जायाणं चेव परिच्छेदयं, तेण णेदमोहिणाणेण सरिसमिदि। ण च बहुएण कालेण णिप्पण्ण(*अ का प्रत्योः 'णिप्पण्णा' इति पाठः।)सत्तट्ठभवग्गहणाणपरिच्छेदयं, तस्स अविसईकदअसेसअत्थपज्जायस्स भवसण्णिदवंजणपज्जाए वावदस्स बहुसमयणिप्फण्णभवेसु पवुत्तिविरोहाभावादो (* प्रतिषु 'वुप्पत्तिविरोहाभावादो' इति पाठः।) अट्ठहि दंडसहस्सेहि जोयणं, तमट्ठहि गुणिदे जोयणपुधत्तब्भंतरदंडाणं पमाणं होदि। एदेसिं घणो (* प्रतिषु 'एदेसिं पुणो' इति पाठः।) उजुमदिमणपज्जयणाणस्स

दो हजार धनुष्यकी एक गव्यूति होती है। उसे आठसे गुणित करनेपर गव्यूतिपृथक्त्व होता है। इसके घनप्रमाण क्षेत्रको ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानी जघन्यसे जानता है।

शंका -- अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है और काल उसका आवलिके असंख्यात भागप्रमाण है। परन्तु अवधिज्ञानसे अल्पतर इस ज्ञानका क्षेत्र गव्यूतिपृथक्त्व कहा है और काल दो तीन भवग्रहणप्रमाण कहा है। यह कैसे बन सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, दोनों ज्ञान भिन्न भिन्न जातिवाले हैं। वह अवधिज्ञान संयत व असंयत सम्बन्धी है, परन्तु मनःपर्ययज्ञान संयतसम्बन्धी है। इससे इनकी पृथक् पृथक् जाति जानी जाती है। इसलिए दोनों ज्ञानोंमें विषयकी अपेक्षा समानता नहीं है। दूसरे, जिस प्रकार

चक्षु इन्द्रिय रसादिको छोड़कर रूपको ही जानती है उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान भी भवविषयक समस्त अर्थपर्यायोंके विना यतः भवसंज्ञक दो तीन व्यंजनपर्यायोंको ही जानता है, इसलिए वह अवधिज्ञानके समान नहीं है। बहुत कालके द्वारा निष्पन्न हुए सात आठ भवग्रहणोंका यह अपरिच्छेदक है, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, अशेष अर्थपर्यायोंको नहीं विषय करनेवाले और भवसंज्ञक व्यंजनपर्यायोंको विषय करनेवाले उस ज्ञानकी बहुत समयोंसे निष्पन्न हुए भवोंमें प्रवृत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

आठ हजार धनुष्योंका एक योजन होता है। उसे आठसे गुणित करनेपर योजनपृथक्त्वके भीतर धनुष्योंका प्रमाण होता है। इनका घन ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र होता है।

उक्कस्सक्खेत्तं होदि।

तं सव्वमुजुमदिमणपज्जयणाणावरणीयं णाम कम्मं।।६९।।

तं सव्वं उजुमदिमणपज्जयणाणं उजुमदिमणपज्जयणाणावरणीयं कम्मं होदि। कुदो णाणस्स कम्मत्तं? आवरणिज्जे आवरणोवयारादो। कुदो एगवयणणिद्देसो? दव्वट्ठियणयावलंबणादो।

जं तं विउलमदिमणपज्जयणाणावरणीयं णाण कम्मं तं छव्विहं -- उज्जुगमणुज्जुगं मणोगदं जाणदि, उज्जुगमणुज्जुगं वचिगदं जाणदि, उज्जुगमणुज्जुगं कायगदं जाणदि (* म. बं. १, पृ. २६. द्वितीयं षोढा ऋजु-वक्कमनोवाक्कायभेदात्। त. रा. १, २३, १०.)।।७०।।

जहत्थो मण-वयण-कायवावारो उज्जुवो णाम। संशय-विपर्ययानध्यवसायरूपो मनोवाक्कायव्यापारः अनृजुः। अर्द्धचिन्तनमचिन्तनं वा अनध्यवसायः। दोलायमानप्रत्ययः संशयः। अयथार्थचिन्ता विपर्ययः। चिंतिदूणं जं विस्सरिदं तं पि जाणदि, जं पि चिंतइस्सिहिदि तं पि जाणदि; तीदाणागयपज्जायाणं सगसरूवेण जीवे संभवादो। जाणणकम्मपरूवणट्ठमुवरिमसुत्तं भणिदं --

मणेण माणसं पडिविंदइत्ता (* म. बं. १, पृ. २४.)

वह सब ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है।।६९।।

यह सब ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है।

शंका -- ज्ञानको कर्मपना कैसे प्राप्त होता है?

समाधान -- आवरणीयमें आवरणके उपचारसे ज्ञानको कर्मपना प्राप्त होता है।

शंका -- सूत्रमें एकवचनका निर्देश किस कारणसे किया है?

समाधान -- द्रव्यार्थिक नयका अवलंबन लेकर एकवचनका निर्देश किया है।

जो विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीयकर्म है वह छह प्रकारका है -- ऋजुमनोगतको जानता है, अनृजुमनोगतको जानता है, ऋजुवचनगतको जानता है, अनृजुवचनगतको जानता है, ऋजुकायगतको जानता है और अनृजुकायगतको जानता है।।७०।।

यथार्थ मन, वचन और कायका व्यापार ऋजु कहलाता है। तथा संशय, विपर्यय और अनध्यवसायरूप मन, वचन और कायका व्यापार अनृजु कहलाता है। अर्धचिन्तन या अचिन्तनका नाम अनध्यवसाय है। दोलायमान ज्ञानका नाम संशय है। अयथार्थ चिन्ताका नाम विपर्यय है। विचार करके जो भूल गये हैं उसे भी यह ज्ञान जानता है। जिसका भविष्यमें चिन्तवन करेंगे उसे भी जानता है, क्योंकि, अतीत और अनागत पर्यायोंका अपने स्वरूपसे जीवमें पाया जाना सम्भव है।

अब जाननेरूप क्रियाके कर्मका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं --

मनके द्वारा मानसको जानकर ।।७१।।

मणेण मदिणाणेण, माणसं णोइंदियं मणोवग्गणखंधणिव्वत्तिदं, पडिविंदइत्ता घेत्तूण पच्छा मणपज्जयणाणेण जाणदि। णोइंदियमदिंदियं कधं मदिणाणेण घेप्पदे? ण ईहालिंगावट्ठंभबलेण अदिंदिएसु वि अत्थेसु वुत्तिदंसणादो। अधवा, मणेण मदिणाणेण माणसं मदिणाणविसयं पडिविंदइत्ता उवलंभिय पच्छा मणपज्जयणाणं पयट्टदि त्ति वत्तव्वं। जदि मणपज्जयणाणं मदिपुव्वं होदि तो तस्स सुदणाणत्तं पसज्जदि त्ति णासंकिज्जं, पच्चक्खस्स अवगहिदाणवगहिदत्थेसु वट्टमाणस्स मणपज्जयणाणस्स सुदभावविरोहादो।

परेसिं सण्णा सदि मदि चिंता जीविद-मरणं लाहालाहं सुहदुक्खं णयरविणासं देसविणासं जणवयविणासं खेडविणासं कव्वडविणासं मडंबविणासं पट्टणविणासं दोणामुहविणासं

अदिवुड्ढि अणावुड्ढि सुवुड्ढि दुव्वुड्ढि सुभिक्खं दुब्भिक्खं खेमाखेमं भय-रोग कालसंपजुत्ते अत्थे जाणदि (* म. बं. १, पृ. २४-२५. तथाऽऽत्मनः परेषां च चिन्ता-जीवित-मरण-सुख-दुःख-लाभालाभादीन् अव्यक्तमनोभिर्व्यक्तमनोभिश्च चिन्तितान् अचिन्तितान् जानाति विपुलमतिः। त. रा. १, २३, १०.) ।।७२।।

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जहा पुव्वं परूविदो तहा परूवेदव्वो।

मन अर्थात् मतिज्ञानके द्वारा मानसको अर्थात् मनोवर्गणाके स्कन्धोंसे निष्पन्न हुई नोइन्द्रियको 'पडिविंदइत्ता' अर्थात् ग्रहण करके पश्चात् मनःपर्ययज्ञानके द्वारा जानता है।

शंका -- नोइन्द्रिय अतीन्द्रिय है, उसका मतिज्ञानके द्वारा कैसे ग्रहण होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, ईहारूप लिंगके अवलम्बनके बलसे अतीन्द्रिय अर्थोंमें भी मतिज्ञानकी प्रवृत्ति देखी जाती है। अथवा, मन अर्थात् मतिज्ञानके द्वारा मानस अर्थात् मतिज्ञानके विषयको ग्रहण करके पश्चात् मनःपर्ययज्ञानपूर्वक प्रवृत्त होता है, ऐसा कथन करना चाहिए।

वह दूसरे जीवोंकी कालसे विशेषित संज्ञा, स्मृति, मति, चिन्ता, जीवित-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, खेटविनाश, कर्वटविनाश, मडंबविनाश, पट्टनविनाश, द्रोणमुखविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय और रोगरूप इन अर्थोंको जानता है।।७२।।

इस सूत्रका अर्थ जिस प्रकार पहले कह आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कथन करना चाहिए।

किंचि भूओ -- अप्पणो परेसिं च वत्तमाणाणं (* का ता प्रत्योः 'वट्टमाणाणं' इति पाठः।) जीवाणं जाणदि अवत्तमाणाणं (* का ता प्रत्योः 'अवट्टमाणाणं' इति पाठः।) ।।७३।।

चिंताए अद्धपरिणयं विस्सरिदचिंतितवत्थु चिंताए (* ता प्रतौ 'चिंतियवत्थु, चिंताए' इति पाठः।) अवावदं च मणमव्वत्तं, अवरं वत्तं। वत्तमाणाणमवत्तमाणाण (* अ आ का प्रतिषु 'वत्तमण्णाणमवत्तमण्णाणं' इति पाठः।) वा जीवाणं चिंताविसयं मणपज्जयणाणी जाणदि (* अ प्रतौ 'जीवाणं जाणदि' इति पाठः।)। जं उज्जुवाणुज्जुवभावेण चिंतिदमद्धचिंतिदं चिंतिज्जमाणमद्धचिंतिज्जमाणं चिंतिहिदि अद्धं चिंतिहिदि वा तं सव्वं जाणदि त्ति भणिदं होदि (*

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं। ओही वा विउलमदी लहिऊण विजाणए पच्छा।। गो. जी. ४४८.)।

कालदो ताव जहण्णेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि, उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भवग्गहणाणि (* म. बं. १, पृ. २६. द्वितीयं कालतो जघन्येन सप्ताष्टौ भवग्रहणाणि, उत्कर्षेणासंख्येयानि गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति। स. सि. १-२३. त. रा. १, २३, १०. तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ। नं. सू. १८.) ।।७४।।

सुगममेदं।

जीवाणं गदिमागदिं पदुप्पादेदि।।७५।।

एदम्हि काले जीवाणं गदिमागदिं भुत्तं कयं पडिसेविदं च पच्चक्खं पदुप्पादेदि जाणदि त्ति भणिदं होदि।

और भी -- व्यक्त मनवाले और अपने दूसरे जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको जानता है, तथा अव्यक्त मनवाले जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको जानता है।।७३।।

चिन्तामें अर्धपरिणत, चिन्तित वस्तुके स्मरणसे रहित और चिन्तामें अव्यापृत मन अव्यक्त कहलाता है। इससे भिन्न मन व्यक्त कहलाता है। व्यक्त मनवाले और अव्यक्त मनवाले जीवोंके चिन्ताके विषयको मनःपर्ययज्ञानी जानता है। ऋजु और अनृजु रूपसे जो चिन्तित या अर्धचिन्तित है, वर्तमानमें जिसका विचार किया जा रहा है या अर्धविचार किया जा रहा है, तथा भविष्यमें जिसका विचार किया जायेगा या आधा विचार किया जायेगा उस सब अर्थको जानता है, यह उक्त कथनका अर्थ है।

कालकी अपेक्षा जघन्यसे सात आठ भवोंको और उत्कर्षसे असंख्यात भवोंको जानता है।।७४।।

यह सूत्र सुगम है।

जीवोंकी गति और आगतिको जानता है।।७५।।

इतने कालके भीतर जीवोंकी गति, आगति, भुक्त, कृत और प्रतिसेवित अर्थको प्रत्यक्ष 'पदुप्पादेदि' अर्थात् जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

खेत्तदो ताव जहण्णेण जोयणपुधत्तं।।७६।।

सुगमं।

उक्कस्सेण माणुसोत्तरसेलस्स अब्भंतरादो णो बहिद्धा (* म. बं. १, पृ. २६. क्षेत्रतो जघन्येन योजनपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण मानुषोत्तरशैलस्याभ्यन्तरं न बहिः। स. सि. १-२३. त. रा. १, २३, १०.)।।७७।।

माणुसोत्तरसेलो एत्थ उवलक्खणभूदो, ण तंतो; तेण पणदालीसजोयणलक्खखेत्तब्भंतरे ट्ठिदाणं चिंताविसयं तिकालगोयरं जाणदि त्ति भणिदं होदि। तेण माणुसोत्तरसेलस्स बाहिरे वि सगविसईभूदक्खेत्तंतो ट्ठाइदूण चिंतेमाणदेव-तिरिक्खाणं चिंताविसयं पि विउलमदिमणपज्जयणाणी जाणदि त्ति सिद्धं (*णरलोए त्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स। तम्हा तग्घणपदरं मणपज्जयखेत्तमुद्दिट्ठं।। xxx तदपि कुतः मानुषोत्तराद्बहिश्चतुःकोणस्थिततिर्यगमराणं परिचिन्तितानां उत्कृष्टविपुलमतेः परिज्ञानात्। गो. जी. पृ. ४५६.)। के वि आइरिया माणुसोत्तरसेलस्स अब्भंतरे चेव जाणदि त्ति भणंति। तेसिमहिप्पाएण माणुसोत्तरसेलादो बाहिरभावावगमो णत्थि। माणुसुत्तरसेलब्भंतरे चेव ट्ठाइदूण चिंतिदं जाणदि ते के वि आइरिया भणंति। तेसिमहिप्पाएण लोगंतट्ठियअत्थो वि पच्चक्खो (* प्रतिषु 'पच्चक्खाए' इति पाठः।) एदे दो वि अत्था ण समंजसा, सगणाणपहुपदलंतो(* अ आ का प्रतिषु 'णाणबहुवदलंतो' इति पाठः।)पदिददव्वस्स अणवगमाणुववत्तीदो। ण च मणपज्जयणाणं माणुसोत्तरसेलेण पडिहम्मइ, अपरायत्तणेण ववहाणविवज्जियस्स बाहाणुववत्तीदो। ण च लोगंतट्ठियमत्थं जाणंतो तत्थट्ठियचित्तं ण जाणदि,

----

क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्यसे योजनपृथक्त्वप्रमाण क्षेत्रको जानता है।।७६।।

यह सूत्र सुगम है।

उत्कर्षसे मानुषोत्तरशैलके भीतर जानता है, बाहर नहीं जानता।।७७।।

मानुषोत्तर शैल यहाँ उपलक्षणभूत है, वास्तविक नहीं है। इसलिए पैंतालीस लाख योजन क्षेत्रकै भीतर स्थित जीवोंके चिन्ताको विषयभूत त्रिकालगोचर पदार्थको वह जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इससे मानुषोत्तर शैलके बाहर भी अपने विषयभूत क्षेत्रके भीतर स्थित

होकर विचार करनेवाले देवों और तिर्यंचोंकी चिन्ताके विषयभूत अर्थको भी विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी जानता है यह सिद्ध होता है।

कितने ही आचार्य मानुषोत्तर शैलके भीतर ही जानता है ऐसा कहते हैं। उनके अभिप्रायानुसार मानुषोत्तर शैलके बाहरके पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता। मानुषोत्तर शैलके भीतर ही स्थित होकर चिन्तित अर्थको जानता है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। उनके अभिप्रायानुसार लोकके अन्तमें स्थित अर्थको भी प्रत्यक्ष जानता है। किन्तु ये दोनों ही अर्थ ठीक नहीं हैं, क्योंकि, तदनुसार अपने ज्ञानरूपी पुष्पदलके भीतर आये हुए द्रव्यका अनवगम बन नहीं सकता। मनःपर्यय ज्ञान मानुषोत्तर शैलके द्वारा रोक दिया जाता है, यह तो कुछ सम्भव है नहीं; क्योंकि, स्वतन्त्र होनेसे व्यवधानसे रहित उक्त ज्ञानकी प्रवृत्तिमें बाधाका होना सम्भव नहीं है। दूसरे, लोकके अन्तमें स्थित अर्थको जाननेवाला यह ज्ञान वहाँ स्थित चित्तको

सगखेत्तंतोट्ठियसगविसयत्थस्स अणवगमाणुववत्तीदो। ण च एवं, खेत्तपमाणपरूवणाए विहलत्तावत्तीदो (* प्रतिषु 'विहल्लत्तावत्तीदो' इति पाठः।) पणदालीसजोयणलक्खब्भंतरे ट्ठाइदूण चिंतयंतजीवेहि चिंतिज्जमाणं दव्वं जदि मणपज्जयणाणपहाए ओट्ठद्धखेत्तब्भंतरे होदि तो जाणदि, अण्णहा ण जाणदि त्ति भणिदं होदि।

तं सव्वं विउलमदिमणपज्जयणाणावरणीयं णाम कम्मं।।७८।।

सुगममेदं, पुव्वं वुत्तत्थत्तादो (*ता प्रतौ 'वुत्तत्थोदो' इति पाठः।)। एवं मणपज्जयणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा गदा।

नहीं जाने, यह भी नहीं हो सकता; क्योंकि, अपने क्षेत्रके भीतर स्थित विषयभूत अर्थका अनवगम बन नहीं सकता। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर क्षेत्रके प्रमाणकी प्ररूपणा निष्फल ठहरती है। इसलिए पैंतालीस लाख योजनके भीतर स्थित होकर चिन्तवन करनेवाले जीवोंके द्वारा विचार्यमाण द्रव्य यदि मनःपर्ययज्ञानकी प्रभासे अवष्टब्ध क्षेत्रके भीतर होता है होता है तो जानता है, अन्यथा नहीं जानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ -- विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान कितने क्षेत्रके विषयको जानता है, इस बातका यहाँ विचार हो रहा है। सूत्रमें इतना ही कहा है कि मानुषोत्तर शैलके भीतरके विषयको जानता है,

बाहरके विषयको नहीं जानता। वीरसेन स्वामी इसका यह व्याख्यान करते हैं कि यहाँ मानुषोत्तर शैल पद उपलक्षण है और इससे पैंतालीस लाख योजनका ग्रहण होता है। इसलिए पैंतालीस लाख योजनके भीतर जो भी चित्तगत पदार्थ स्थित हो उसे वह जानता है। पैंतालीस लाख योजनमें मानुषोत्तर शैलकी कोई मर्यादा नहीं। मानुषोत्तर शैलके बाहर भी यह क्षेत्र हो सकता है। इस विषयके दो व्याख्यान और उपलब्ध होते हैं। प्रथम तो यह कि 'मानुषोत्तर शैल' पद उपलक्षण नहीं है, किन्तु इसके भीतरके चित्तगत पदार्थको ही जानता है, और दूसरा यह कि इसके भीतर स्थित जीवोंके चित्तगत पदार्थको यद्यपि जानता है फिर भी चित्तगत वह पदार्थ लोकान्त तकका भी यदि हो तो उसे भी जानता है। किन्तु वीरसेन स्वामी इन दोनों व्याख्यानोंको स्वीकार नहीं करते। प्रथम मतके सम्बन्धमें उनका कहना है कि मानुषोत्तर शैलको यदि मर्यादा माना जाता है तो इसका यह अर्थ होता है कि वह शैल मनःपर्ययज्ञानमें रुकावट करता है। ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि, मनःपर्ययज्ञान पराधीन नहीं है। इसलिए यहाँ मानुषोत्तर शैलको पैंतालीस लाख योजन क्षेत्रका उपलक्षण ही मानना चाहिए। दूसरे मतके सम्बन्धमें उनका कहना यह है कि यदि विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान मानुषोत्तर शैलके भीतर स्थित जीवोंके चित्तगत लोकान्त तकके विषयको जानता है तो वह लोकान्त तकके जीवोंके चित्तको भी जान सकता है, और ऐसी हालतमें फिर क्षेत्रकी मर्यादा मानुषोत्तर शैल तककी नहीं बन सकती। इसलिए यही निश्चित होता है कि मनःपर्ययज्ञानका जो क्षेत्र है उसके भीतर चित्तगत विषयको यदि वह उसके क्षेत्रके भीतर हो तो जानता है, अन्यथा नहीं जानता।

यह सब विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है।।७८।।

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, इसका अर्थ पहले कहा जा चुका है। इस प्रकार मनःपर्यय-ज्ञानावरणीय कर्मका कथन किया।

केवलणाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ?।।७९।।

सुगममेदं पुच्छासुत्तं।

केवलणाणावरणीयस्स कम्मस्स एया चेव पयडी।।८०।।

कुदो? बहूणं केवलणाणमभावादो। संपहि केवलणाणस्स लक्खणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि --

तं च केवलणाणं सगलं संपुण्णं असवत्तं (* संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं। लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं गुणेयव्वं।। गो. जी. ४५९.) ।।८१।।

अखंडत्वात् सकलम्। कथमस्याखंडत्वम्? समस्ते बाह्यार्थे अप्रवृत्तौ सत्यां खंडता। न च तदस्ति, विषयीकृताशेषत्रिकालगोचरबाह्यार्थत्वात्। अथवा, कलास्तावदवयवा (* अ आ का प्रतिषु 'कलास्थावयवा', ता प्रतौ 'कलास्था(स्तावद)वयवा' इति पाठः।) द्रव्य-गुण-पर्य्ययभेदावगमान्यथानुपपत्तितोऽवगतसत्त्वाः, सह कलाभिर्वर्तत इति सकलम्। अनन्तदर्शन-वीर्य-विरति-क्षायिकसम्यक्त्वाद्यनन्तगुणैः सम्यक् परस्परपरिहारलक्षणविरोधे सत्यपि सहानवस्थानलक्षणविरोधाभावेन पूर्णत्वात् सम्पूर्णं केवलज्ञानम्, सकलगुणनिधानमिति यावत्। सपत्नाश्शत्रवः कर्माणिन, (* अ आ का प्रतिषु 'सपत्नाः शत्रवः कर्म्मणि', ता प्रतौ 'सपत्नाश्शत्रवः, कर्मणि' इति पाठः।) न विद्यन्ते सपत्नाः यस्मिन् तदसपत्नं केवलज्ञानं,

----

केवलज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियाँ हैं?।।७९।।

यह पृच्छासूत्र सुगम है।

केवलज्ञानावरणीय कर्मकी एक ही प्रकृति है।।८०।।

क्योंकि, केवलज्ञान बहुत नहीं है। अब केवलज्ञानका लक्षण कहनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं --

वह केवलज्ञान सकल है, सम्पूर्ण है और असपत्न है।।८१।।

अखण्ड होनेसे वह सकल है।

शंका -- यह अखण्ड कैसे है?

समाधान --समस्त बाह्य अर्थमें प्रवृत्ति नहीं होनेपर ज्ञानमें खण्डपना आता है, सो वह इस ज्ञानमें सम्भव नहीं है, इस ज्ञानके विषय त्रिकालगोचर अशेष बाह्य पदार्थ हैं।

अथवा, द्रव्य, गुण और पर्यायके भेदका ज्ञान अन्यथा नहीं बन सकनेके कारण जिनका अस्तित्व निश्चित है ऐसे ज्ञानके अवयवोंका नाम कला है; इन कलाओंके साथ वह अवस्थित रहता है इसलिए सकल है। 'सम्'का अर्थ सम्यक् है, सम्यक् अर्थात् परस्परपरिहार लक्षण विरोधके होनेपर भी सहानवस्थान लक्षण विरोधके न होनेसे चूँकि यह अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, विरति एवं क्षायिकसम्यक्त्व आदि अनन्त गुणोंसे पूर्ण है; इसलिए सम्पूर्ण कहा जाता है। वह सकल गुणोंका निधान है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। सपत्नका अर्थ शत्रु है, केवलज्ञानके शत्रु कर्म हैं। वे इसके नहीं रहे हैं, इसलिए केवलज्ञान।

निर्म्मूलोन्मूलितस्वप्रतिपक्षघातिचतुष्कमिति यावत्। एवं केवलणाणं सयं चेव उप्पज्जदि त्ति जाणावणट्ठं तव्विसयपरूवणट्ठं च उत्तरसुत्तं भणदि --

सइं भगवं उप्पण्णणाणदरिसी सदेवासुर-माणुसस्स लोगस्स आगदिं गदिं चयणोववादं बंधं मोक्खं इड्ढिं ट्ठिदिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं माणो माणसियं भुत्तं कदं पडिसेविदं आदिकम्मं अरहकम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सम्मं समं जाणदि पस्सदि विहरदि त्ति (* म. बं. १, पृ. २७.) ।।८२।।

ज्ञानधर्ममाहात्म्यानि भगः, सोऽस्यास्तीति भगवान्। उत्पन्नज्ञानेन द्रष्टुं शीलमस्येत्युत्पन्न-ज्ञानदर्शी, स्वयमुत्पन्नज्ञानदर्शी भगवान् सर्वलोकं जानाति। कथं ज्ञानस्य स्वयमुत्पत्तिः? न, कार्य-कारणयोरेकाधिकरणत्वतो भेदाभावात्। सौधर्मादयो देवाः, असुराश्च भवनवासिनः। देवासुरवचनं देशामर्शकमिति ज्योतिषां व्यन्तराणां तिरश्चां च ग्रहणं कर्तव्यम्। सदेवासुरमानुषस्य लोकस्य आगतिं जानाति। अण्णगदीदो इच्छिदगदीए आगमणमागदी णाम। इच्छिदगदीदो अण्णगदि-गमणं गदी णाम। सोधम्मिंदादिदेवाणं सगसंपयादो विरहो चयणं णाम। अप्पिदगदीदो अण्णगदीए समुप्पत्ती

उसने अपने प्रतिपक्षी घातिचतुष्कका समूल नाश कर दिया है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यह केवलज्ञान स्वयं ही उत्पन्न होता है, इस बातका ज्ञान करानेके लिए और उसके विषयका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं --

स्वयं उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शनसे युक्त भगवान् देवलोक और असुरलोकके साथ मनुष्यलोककी गति, आगति, चयन, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, युति, अनुभाग, तर्क, कल, मन, मानसिक, भुक्त, कृत, प्रतिसेवित, आदिकर्म, अरहःकर्म, सब लोकों, सब जीवों और सब भावोंको सम्यक् प्रकारसे युगपत् जानते हैं, देखते हैं और विहार करते हैं।।८२।।

ज्ञान-धर्मके माहात्म्योंका नाम भग है, वह जिनके है वे भगवान् कहलाते हैं। उत्पन्न हुए ज्ञानके द्वारा देखना जिसका स्वभाव है उसे उत्पन्नज्ञानदर्शी कहते हैं। स्वयं उत्पन्न हुए ज्ञ ानदर्शन स्वभाववाले भगवान् सब लोकको जानते हैं।

शंका -- ज्ञानकी उत्पत्ति स्वयं कैसे होती है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, कार्य और कारणका एकाधिकरण होनेसे इनमें कोई भेद नहीं है।

सौधर्मादिक देव, और भवनवासी असुर कहलाते हैं। यहाँ देवासुर वचन देशामर्शक है, इसलिए इससे ज्योतिषी, व्यन्तर और तिर्यंचोंका भी ग्रहण करना चाहिए। देवलोक और असुरलोकके साथ मनुष्यलोककी आगतिको जानते हैं। अन्य गतिसे इच्छित गतिमें आना आगति है। इच्छित गतिसे अन्य गतिमें जाना गति है। सौधर्मादिक देवोंका अपनी सम्पदासे विरह होना चयन है। विवक्षित गतिसे अन्य

उववादो णाम। जीवाणं विग्गहाविग्गहसरूवेण आगमणं गमणं चयणमुववादं च जाणदि त्ति भणिदं होदि। तहा पोग्गलाणमागमणं गमणं चयण(* का ता प्रत्योः '-- मागमणं चयण--' इति पाठः)मुववादं च जाणदि। पोग्गलेसु अप्पिदपज्जाएण विणासो चयणं, अण्णपज्जाएण परिणामो उववादो णाम। धम्माधम्मकालागासाणं चयणमुववादं च जाणदि, तेसिं गमणागमणाभावादो। लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते अस्मिन् जीवादयः पदार्था इति आगासो चेव लोगो त्ति। तेण आधेये आधारोवयारेण धम्मादीणं पि लोगत्तसिद्धीए।

बन्धनं बन्धः, बध्यते अनेनास्मिन्निति वा बन्धः। सो च बंधो तिविहो -- जीवबंधो पोग्गलबंधो जीव-पोग्गलबंधो चेदि। एगसरीरट्ठिदाणमणंताणं णिगोदजीवाणं अण्णोण्णबंधो सो जीवबंधो णाम। दो-तिण्णिआदिपोग्गलाणं जो समवाओ सो पोग्गलबंधो णाम। ओरालिय-

वेउव्विय-आहार-तेया-कम्मइयवग्गणाणं जीवाणं च जो बंधो सो जीवपोग्गलबंधो णाम। जेण कम्मेण जीवा अणंताणंता एक्कम्मि सरीरे अच्छंति तं कम्मं जीवबंधो णाम। जेण णिद्ध-ल्हुक्खादिगुणेण पोग्गलाणं बंधो होदि सो पोग्गलबंधो णाम। जेहि मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगादीहि जीव-पोग्गलाणं बंधो होदि सो जीव-पोग्गलबंधो णाम। एदं बंधं पि सो भयवंतो जाणदि।

गतिमें उत्पन्न होना उपपाद है। जीवोंके विग्रहके साथ तथा विना विग्रहके आगमन, गमन, चयन और उपपादको जानते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। तथा पुद्‌गलोंके आगमन, गमन, चयन और उपपादको जानते हैं। पुद्‌गलोंमें विवक्षित पर्यायोंका नाश होना चयन है। अन्य पर्यायरूपसे परिणमना उपपाद है। धर्म, अधर्म, काल और आकाशके चयन और उपपादको जानते हैं, क्योंकि इनका गमन और आगमन नहीं होता। जिसमें जीवादिक पदार्थ लोके जाते हैं अर्थात् उपलब्ध होते हैं उसकी लोक संज्ञा है। यहाँ 'लोक' शब्दसे आकाश लिया गया है। इसलिए आधेयमें आधारका उपचार करनेसे धर्मादिक भी लोक सिद्ध होते हैं।

बंधनेका नाम बन्ध है। अथवा जिसके द्वारा या जिसमें बँधते हैं उसका नाम बन्ध है। वह बन्ध तीन प्रकारका है -- जीवबन्ध, पुद्‌गलबन्ध और जीव-पुद्‌गलबन्ध। एक शरीरमें रहनेवाले अनन्तानन्त निगोद जीवोंका जो परस्पर बन्ध है वह जीवबन्ध कहलाता है। दो तीन आदि पुद्‌गलोंका जो समवाय सम्बन्ध होता है वह पुद्‌गलबन्ध कहलाता है। तथा औदारिक वर्गणाएँ, आहारक वर्गणाएँ और कार्मण वर्गणाएँ, इनका और जीवोंका जो बन्ध होता है वह जीव-पुद्‌गलबन्ध कहलाता है। जिस कर्मके कारण अनन्तानन्त जीव एक शरीरमें रहते हैं उस कर्मकी जीवबन्ध संज्ञा है। जिस स्निग्ध और रूक्ष आदि गुणके कारण पुद्‌गलोंका बन्ध होता है उसकी पुद्‌गलबन्ध संज्ञा है। जिन मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग आदिके निमित्तसे जीव और पुद्‌गलोंका बन्ध होता है वह जीव-पुद्‌गलबन्ध कहलाता है। इस बन्धको भी वे भगवान् जानते हैं।

मोचनं मोक्षः, मुच्यते अनेनास्मिन्निति वा मोक्षः। सो मोक्खो तिविहो -- जीवमोक्खो, पोग्गलमोक्खो जीव-पोग्गलमोक्खो चेदि। एवं मोक्खकारणं पि तिविहं वत्तव्वं। बंधं बंधकारणं

बंधपदेस-बद्ध-बज्झमाणजीवे पोग्गले च, मोक्खं मोक्खकारणं मोक्खपदेसमुक्क-मुच्चमाणजीव-पोग्गले च तिकालविसए जाणदि त्ति भणिदं होदि। भोगोवभोगोहयहत्थि-मणि-रयणसंपया संपय(*ता प्रतौ 'मणिरयणं संपयासंपय--' इति पाठः।)कारणं च इद्धी णाम। तिहुणवणगयसयलसंपयाओ देवासुर-मणुव-संपयकारणाणि च जाणदि त्ति भणिदं होदि। छदव्वाणमप्पिदभावेण अवट्ठाणं अवट्ठाणकारणं च च ट्ठिदी णाम। दव्वट्ठिदि-कम्मट्ठिदि-कायट्ठिदि-भवट्ठिदि-भावट्ठिदिआदिट्ठिदिं च सकारणं जाणदि (* अ प्रतौ '-- ट्ठिदिं य जाणदि' इति पाठः।) त्ति भणिदं होदि। दव्वक्खेत्त-काल-भावेहि जीवादिदव्वाणं मेलणं जुडी णाण। युति-बन्धयोः को विशेषः? एकीभावो बन्धः, सामीप्यं (* आ का प्रत्योः 'सामीणं', ता प्रतौ 'सामीणं (प्पं)' इति पाठः।) संयोगो वा युतिः। तत्थ दव्वजुडी तिविहा -- जीवजुडी पोग्गलजुडी जीवपोग्गलजुडी चेदि। तत्थ एक्कम्हि कुले गामे णयरे बिले गुहाए अडईए जीवाणं मेलणं जीवजुडी णाम। वाएण हिंडिज्जमाणपण्णाणं व एक्कम्हि देसे पोग्गलाणं मेलणं पोग्गलजुडी णाम। जीवाणं पोग्गलाणं च मेलणं जीवपोग्गलजुडी णाम। अधवा दव्वजुडी जीव-पोग्गल-धम्माधम्मकाल-आगासाणमेगादिसंजोगेण उप्पादेदव्वा।

छूटनेका नाम मोक्ष है, अथवा जिसके द्वारा या जिसमें मुक्त होते हैं वह मोक्ष कहलाता है। वह मोक्ष तीन प्रकारका है -- जीवमोक्ष, पुद्‌गलमोक्ष और जीव-पुद्‌गलमोक्ष। इसी प्रकार मोक्षका कारण भी तीन प्रकार कहना चाहिए। बन्ध, बन्धका कारण, बन्धप्रदेश एवं बध्यमान जीव और पुद्‌गल; तथा मोक्ष, मोक्षका कारण, मोक्षप्रदेश, मुक्त एवं मुच्यमान जीव और पुद्‌गल, इन सब त्रिकालविषयक अर्थोंको जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। भोग व उपभोगरूप घोड़ा, हाथी, मणि व रत्नरूप सम्पदा तथा उस सम्पदाकी प्राप्तिके कारणका नाम ऋद्धि है। तीन लोकमें रहनेवाली सब सम्पदाओंको तथा देव, असुर और मनुष्य भवकी सम्प्राप्तिके कारणोंको भी जानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है। छह द्रव्योंका विवक्षित भावसे अवस्थान और अवस्थानके कारणका नाम स्थिति है। द्रव्यस्थिति, कर्मस्थिति, कायस्थिति, भवस्थिति और भावस्थिति आदि स्थितिको सकारण जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके साथ जीवादि द्रव्योंके सम्मेलनका नाम युति है।

शंका -- युति और बन्धमें क्या भेद है?

समाधान -- एकीभावका नाम बन्ध है और समीपता या संयोगका नाम युति है।

यहाँ द्रव्ययुति तीन प्रकारकी है -- जीवयुति, पुद्‌गलयुति और जीव-पुद्‌गलयुति। इसमेंसे एक कुल, ग्राम, नगर, बिल, गुफा या अटवीमें जीवोंका मिलना जीवयुति है। वायुके कारण हिलनेवाले पत्तोंके समान एक स्थानपर पुद्‌गलोंका मिलना पुद्‌गलयुति है। जीव और पुद्‌गलोंका मिलना जीव-पुद्‌गलयुति है। अथवा जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म और आकाश इनके एक आदि संयोगके द्वारा द्रव्ययुति उत्पन्न करानी

जीवादिदव्वाणं णिरयादिखेत्तेहि सह मेलणं खेत्तजुडी णाम। तेसिं चेव दव्वाणं दिवस-मास-संवच्छरादिकालेहि सह मेलणं कालजुडी णाम। कोह-माण-माया-लोहादीहि सह मेलणं भावजुडी णाम। एवं सव्वं पि जुडिवियप्पं तिकालविसयं सो भयवंतो जाणदि।

छदव्वाणं सत्ती अणुभागो णाम। सो च अणुभागो छव्विहो -- जीवाणुभागो, पोग्गलाणुभागो धम्मत्थियअणुभागो अधम्मत्थियअणुभागो आगासत्थियअणुभागो कालदव्वाणुभागो चेदि। तत्थ असेसदव्वावगमो जीवाणुभागो। जर-कुट्ठक्खयादिविणासणं तदुप्पायणं च पोग्गलाणुभागो। जोणिपाहुडे भणिदमंत-तंतसत्तीयो पोग्गलाणुभागो त्ति घेत्तव्वो। जीव-पोग्गलाणं गमणागमणहेदुत्तं धम्मत्थियाणुभागो। तेसिमवट्ठाणहेदुत्तं अधम्मत्थियाणुभागो। जीवादिदव्वाणमाहारत्त-मागासत्थियाणुभागो। अण्णेसिं दव्वाणं कमाकमेहि परिणमणहेदुत्तं कालदव्वाणुभागो। एवं दुसंजोगादिणा अणुभागपरूवणा कायव्वा -- मट्टियापिंड-दंड-चक्क-चीवर-जल-कुंभारादीणं घडुप्पायणाणुभागो। एदमणुभागं पि जाणदि। तर्क्को हेतुर्ज्ञापक(*अ आ ता प्रतिषु 'हेतु ज्ञापक--', का प्रतौ 'हेतु ज्ञायक' इति पाठः।)मित्यनर्थान्तरम्। एदं पि जाणदि। चित्तकम्म-पच्चच्छेज्जादी(* अ प्रतौ 'पत्तच्छेद्यादि', का ता प्रत्योः 'पत्तच्छेज्जादि' इति पाठः।) कला णाम। कलं पि जाणदि। मणोवग्गणाए णिव्वत्तियं हिययपउमं मणो णाम, मणोजणिदणाणं वा मणो

चाहिए। जीवादि द्रव्योंका नारकादि क्षेत्रोंके साथ मिलना क्षेत्रयुति है। उन्हीं द्रव्योंका दिन, महीना और वर्ष आदि कालोंके साथ मिलाप होना कालयुति है। क्रोध, मान, माया और

लोभादिकके साथ उनका मिलाप होना भावयुति है। त्रिकालविषयक इन सब युतियोंके भेदको वे भगवान् जानते हैं।

छह द्रव्योंकी शक्तिका नाम अनुभाग है। वह अनुभाग छह प्रकारका है -- जीवानुभाग, पुद्‌गलानुभाग, धर्मास्तिकायानुभाग, अधर्मास्तिकायानुभाग, आकाशास्तिकायानुभाग और कालद्रव्यानुभाग। इनमेंसे समस्त द्रव्योंको जानना जीवानुभाग है। ज्वर, कुष्ठ और क्षय आदिका विनाश करना और उत्पन्न करना इसका नाम पुद्‌गलानुभाग है। योनिप्राभृतमें कहे गये मंत्र-तंत्ररूप शक्तियोंका नाम पुद्‌गलानुभाग है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। जीव और पुद्‌गलोंके गमन और आगमनमें हेतु होना धर्मास्तिकायानुभाग है। उन्हींके अवस्थानमें हेतु होना अधर्मास्तिकायानुभाग है। जीवादि द्रव्योंका आधार होना आकाशास्तिकायानुभाग है। अन्य द्रव्योंके क्रम और अक्रमसे परिणमनमें हेतु होना कालद्रव्यानुभाग है। इसी प्रकार द्विसंयोगादि रूपसे अनुभागका कथन करना चाहिए। जैसे -- मृत्तिकापिण्ड, दण्ड, चक्र, चीवर, जल और कुम्हार आदिका घटोत्पादनरूप अनुभाग। इस अनुभागको भी जानते हैं। तर्क, हेतु और ज्ञापक ये एकार्थवाची शब्द हैं। इसे भी जानते हैं। चित्रकर्म और पत्रच्छेदन आदिका नाम कला है। कलाको भी वे जानते हैं। मनोवर्गणासे बने हुए हृदयकमलका नाम मन है। अथवा मनसे उत्पन्न हुए ज्ञानको मन